

## भगवान् पार्श्वनाथ की विरासत ।

[ एक ऐतिहासिक अध्ययन ]

वर्तमान जैन परंपरा भगवान् महावीर की विरासत है । उनके आचार-विचार की छाप इसमें अनेक रूप से प्रकट होती है, इस बारे में तो किसी ऐतिहासिक को सन्देह था ही नहीं । पर महावीर की आचार-विचार की परंपरा उनकी निजी निर्मित है—जैसे कि बौद्ध परंपरा तथागत बुद्ध की निजी निर्मित है—या वह पूर्ववर्ती किसी तपस्वी की परंपरागत विरासत है ? इस विषय में पाश्चात्य ऐतिहासिक बुद्धि चुप न थी । जैन परंपरा के लिये श्रद्धा के कारण जो बात असन्दिग्ध थी उसी के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से एवं ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करनेवाले तटस्थ पाश्चात्य विद्वानों ने सन्देह प्रकट किया कि, पार्श्वनाथ आदि पूर्ववर्ती तीर्थंकरों के अस्तित्व में क्या कोई ऐतिहासिक प्रमाण है ? इस प्रश्न का माकूल जवाब तो देना चाहिए था जैन विद्वानों को, पर वे वैसा कर न सके । आखिर डॉ० याकोबी जैसे पाश्चात्य ऐतिहासिक ही आगे आए, और उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टि से छानबीन करके अकाट्य प्रमाणों के आधार पर बतलाया कि, कम से कम पार्श्वनाथ तो ऐतिहासिक हैं ही<sup>१</sup> । इस विषय में याकोबी महाशय ने जो प्रमाण बतलाए उनमें जैन आगमों के अतिरिक्त बौद्ध पिटक का भी समावेश होता है । बौद्ध पिटकगत उल्लेखों से जैन आगमगत वर्णनों का मेल बिठाया गया तब ऐतिहासिकों की प्रतीति दृढ़तर हुई कि, महावीर के पूर्व पार्श्वनाथ अवश्य हुए हैं । जैन आगमों में पार्श्वनाथ के पूर्ववर्ती बाईस तीर्थंकरों का वर्णन आता है । पर उसका बहुत बड़ा हिस्सा मात्र पौराणिक है । उसमें ऐतिहासिक प्रमाणों की कोई गति अभी तो नहीं दिखती ।

१. डॉ० याकोबी : "That Parsva was a historical person, is now admitted by all as very probable."

—Sacred Books of the East, Vol. XLV,  
Introduction, pp. XXI—XXXIII

याकोबी द्वारा पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता स्थापित होते ही विचारक और गवेषक को उपलब्ध जैन आगम अनेक बातों के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व के जान पड़े और वैसे लोग इस दृष्टि से भी आगमों का अध्ययन-विवेचन करने लगे। फलतः कतिपय भारतीय विचारकों ने और विशेषतः पाश्चात्य विद्वानों ने उपलब्ध जैन आगम के आधार पर अनेकविध ऐतिहासिक सामग्री इकट्ठी की और उसका यत्र-तत्र प्रकाशन भी होने लगा। अब तो धीरे-धीरे रूढ़ और श्रद्धालु जैन वर्ग का भी ध्यान ऐतिहासिक दृष्टि से श्रुत का अध्ययन करने की ओर जाने लगा है। यह एक सन्तोष की बात है।

प्रस्तुत लेख में उसी ऐतिहासिक दृष्टि का आश्रय लेकर विचार करना है कि, भगवान् महावीर को जो आचार-विचार की आध्यात्मिक विरासत मिली वह किस-किस रूप में मिली और किस परंपरा से मिली? इस प्रश्न का संक्षेप में निश्चित उत्तर देने के बाद उसका स्पष्टीकरण क्रमशः किया जाएगा। उत्तर यह है कि, महावीर को जो आध्यात्मिक विरासत मिली है, वह पार्श्वनाथ की परंपरागत देन है। वह विरासत मुख्यतया तीन प्रकार की है—( १ ) संघ ( २ ) आचार और ( ३ ) श्रुत।

यद्यपि उपलब्ध आगमों में कई आगम ऐसे हैं कि जिनमें किसी न किसी रूप में पार्श्वनाथ या उनकी परंपरा का सूचन हुआ है। परन्तु इस लेख में मुख्यतया पाँच<sup>२</sup> आगम, जो कि इस विषय में अधिक महत्त्व रखते हैं, और जिनमें अनेक पुरानी बातें किसी न किसी प्रकार से यथार्थ रूप में सुरक्षित रह गई हैं, उनका उपयोग किया जाएगा। साथ ही बौद्ध पिटक में पाए जानेवाले संवादी उल्लेखों का तथा नई खोज करनेवालों के द्वारा उपस्थित की गई सामग्री में से उपयोगी अंश का भी उपयोग किया जाएगा।

दिगंबर-श्वेतांबर दोनों के ग्रंथों में वर्णित है कि, पार्श्वनाथ का जन्म काशी—बनारस में हुआ और उनका निर्वाण सम्मत्तशिखर वर्तमान पार्श्वनाथ पहाड़—पर हुआ। दोनों के चरित्र-विषयक साहित्य से इतना तो निर्विवाद मालूम होता है कि पार्श्वनाथ का धर्म-प्रचार-क्षेत्र पूर्व भारत—खास कर गंगा के उत्तर और दक्षिण भाग—में रहा। खुद पार्श्वनाथ की विहार भूमि को सोमा का निश्चित निर्देश करना अभी संभव नहीं, परन्तु उनकी शिष्य परंपरा, जो पार्श्वपत्निक कहलाती है, उसके विहार क्षेत्र की सीमा जैन और बौद्ध ग्रंथों के आधार पर, अस्पष्ट रूप में भी निर्दिष्ट की जा सकती है। अंगुत्तरनिकाय नामक

२. आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, भगवती और उत्तराध्ययन।

बौद्ध ग्रन्थ में बतलाया है कि, वप्प नाम का शाक्य निर्ग्रन्थश्रावक था ।<sup>३</sup> इसी मूल सुत्त की अष्टकथा में वप्प को गौतम बुद्ध का चाचा कहा है । वप्प बुद्ध का समकालीन कपिलवस्तु का निवासी शाक्य था । कपिलवस्तु नेपाल की तराई में है । नीचे की और रावती नदी—जो बौद्ध ग्रन्थों में अचिरावती नाम से प्रसिद्ध है, जो इरावती भी कहलाती है—उसके तट पर श्रावस्ती नामक प्रसिद्ध शहर था, जो आजकल सहटमहट<sup>४</sup> कहलाता है । श्रावस्ती में पार्श्वनाथ की परंपरा का एक निर्ग्रन्थ केशी था, जो महावीर के मुख्य शिष्य गौतम से मिला था<sup>५</sup> । उसी केशी ने पएसी नामक राजा को और उसके सारथि को धर्म प्राप्त कराया था<sup>६</sup> । जैन आगमगत सेयविया<sup>७</sup> ही बौद्ध पिटकों की सेतव्या जान पड़ती है, जो श्रावस्ती से दूर नहीं । वैशाली, जो मुजफ्फरपुर जिले का आजकल का बसाढ<sup>८</sup> है, और क्षत्रियकुण्ड जो वासुकुण्ड<sup>९</sup> कहलाता है तथा वाणिज्यग्राम,<sup>१०</sup> जो बनिया कहलाता है, उसमें भी पार्श्वपत्थिक मौजूद थे, जब कि महावीर का जीवनकाल आता है । महावीर के माता-पिता भी पार्श्वपत्थिक कहे गए हैं<sup>११</sup> । उनके नाना चेटक तथा बड़े भाई नन्दीवर्धन आदि पार्श्वपत्थिक रहे हों तो आश्चर्य नहीं । गंगा के दक्षिण राजगृही था, जो आजकल का राजगिर है । उसमें जब महावीर धर्मोपदेश करते हुए आते हैं तब तुंगियानिवासी पार्श्वपत्थिक श्रावकों और पार्श्वपत्थिक थेरों के बीच हुई धर्म चर्चा की बात गौतम के द्वारा

३. एकं समयं भगवा सक्केसुं विहरति कपिलवत्थुस्मिं अथ खो वप्पो सक्को निगण्ठसावगो इ० ॥—अंगुत्तरनिकाय, चतुक्कनिपात, वग्ग ५ ।

The Dictionary of Pali Proper Names, Vol II, P. 832.

४. श्री नन्दलाल डे : The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India, P. 189.

५. उत्तराध्ययनसूत्र, अ० २३ ।

६. रायपसेण्ड्य ( पं० वेचरदासजी संपादित ), पृ० ३३० आदि ।

७. देखो उपर्युक्त ग्रन्थ, पृ० २७४ ।

८, ९, १० देखो—वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ६२; आ० विजय-कल्याणसूरी कृत अमणभगवानमहावीर में विहारस्थलनाम-कोष; The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India.

११. समणस्स एं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिजसमणोवासग्गा यावि होत्था ।—आचारांग, २, भावचूलिका ३, सूत्र ४०१ ।

सुनते हैं<sup>१२</sup>। तुंगिया राजगृह के नजदीक में ही कोई नगर होना चाहिये, जिसकी पहचान आचार्य विजयकल्याणसुरि आधुनिक तुंगी ग्राम से कराते हैं<sup>१३</sup>।

बच्चे-बुच्चे ऊपर के अति अल्प वर्णनों से भी इतना तो निष्कर्ष हम निर्विवाद रूप से निकाल सकते हैं कि, महावीर के भ्रमण और धर्मोपदेश के वर्णन में पाए जाने वाले गंगा के उत्तर दक्षिण के कई गाँव-नगर पार्श्वनाथ की परम्परा के निर्ग्रंथों के भी विहार-क्षेत्र एवं धर्मप्रचार-क्षेत्र रहे। इसी से हम जैन आगमों में यत्र-तत्र यह भी पाते हैं कि, राजगृही आदि में महावीर की पार्श्वपत्नियों से भेंट हुई।

बुद्ध बुद्ध अपनी बुद्धत्व के पहले की तपश्चर्या और चर्या का जो वर्णन करते हैं उसके साथ तत्कालीन निर्ग्रंथ आचार<sup>१४</sup> का हम जब मिलान करते हैं, कपिलवस्तु के निर्ग्रंथ श्रावक वप्प शाक्य का निर्देश सामने रखते हैं तथा बौद्ध पिटकों में पाए जाने वाले खास आचार और तत्त्वज्ञान संबन्धी कुछ पारिभाषिक शब्द<sup>१५</sup>, जो केवल निर्ग्रंथ प्रवचन में ही पाए जाते हैं— इन सब पर विचार करते हैं तो ऐसा मानने में कोई खास सन्देह नहीं रहता कि, बुद्ध ने भले थोड़े

१२. भगवती, २, ५।

१३. भ्रमणभगवान्महावीर, पृ० ३७१।

१४. तुलना—दशवैकालिक, अ० ३, ५-१ और मज्झिमनिकाय, महासिंहनादसुत्त।

१५. पुग्गल, आसव, संवर, उपोसथ, सावक, उपासग इत्यादि।

‘पुग्गल’ शब्द बौद्ध पिटक में पहले ही से जीव-व्यक्ति का बोधक रहा है। (मज्झिमनिकाय ११४) ; जैन परम्परा में वह शब्द सामान्य रूप से जड़ परमाणुओं के अर्थ में रूढ हो गया है। तो भी भगवती, दशवैकालिक के प्राचीन स्तरों में उसका बौद्ध पिटक स्वीकृत अर्थ भी सुरक्षित रहा है। भगवती के ८-१०-३६१ में गौतम के प्रश्न के उत्तर में महावीर के मुख से कहलाया है कि, जीव ‘पोग्गली’ भी है और ‘पोग्गल’ भी। इसी तरह भगवती के २०-२ में जीवतत्त्व के अभिवचन—पर्यायरूप से ‘पुग्गल’ पद आया है। दशवैकालिक ५-१-७३ में ‘पोग्गल’ शब्द ‘मांस’ अर्थ में प्रयुक्त है, जो जीवनधारी के शरीर से संबंध रखता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि वह शब्द जैन-बौद्ध श्रुत से भिन्न किसी भी प्राचीन उपलब्ध श्रुत में देखा नहीं जाता।

‘आसव’ और ‘संवर’ ये दोनों शब्द परस्पर विरुद्धार्थक हैं। आसव चित्त या आत्मा के क्लेश का बोधक है, जब कि संवर उसके निवारण एवं निवारणोपायका। ये दोनों शब्द पहले से जैन-आगम और बौद्ध पिटक में समान

ही समय के लिये हो, पार्श्वनाथ की परंपरा को स्वीकार किया था। अध्यापक धर्मानन्द कौशाब्दी ने भी अपनी अन्तिम पुस्तक 'पार्श्वनाथाचा चातुर्थ्याम धर्म' (पृ० २४, २६) में ऐसी ही मान्यता सूचित की है।

बुद्ध महावीर से प्रथम पैदा हुए और प्रथम ही निर्वाण प्राप्त किया। बुद्ध ने निर्ग्रंथों के तपःप्रदान आचारों की अवहेलना<sup>१९</sup> की है, और पूर्व-पूर्व गुरुओं की चर्या तथा तत्त्वज्ञान का मार्ग छोड़ कर अपने अनुभव से एक नए विशिष्ट मार्ग की स्थापना की है, गृहस्थ और त्यागी संन्यस का नया निर्माण किया है; जब कि महावीर ने ऐसा कुछ नहीं किया। महावीर का पितृधर्म पार्श्वपत्निक निर्ग्रंथों का है। उन्होंने कहीं भी उन निर्ग्रंथों के मौलिक आचार एवं तत्त्वज्ञान की जरा भी अवहेलना नहीं की है; प्रत्युत निर्ग्रंथों के परम्परागत उन्हीं आचार-विचारों को अपनाकर अपने जीवन के द्वारा उनका संशोधन, परिवर्धन एवं प्रचार किया है। इससे हमें मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि, महावीर पार्श्वनाथ की

अर्थ में ही प्रयुक्त देखे जाते हैं ( तत्त्वार्थाधिगम सूत्र ६-१, २,; ८-१; ९-१; स्थानांगसूत्र १ स्थान; समवायांगसूत्र ५ समवाय; मज्झिमनिकाय २।

'उपोसथ' शब्द गृहस्थों के उपव्रत-विशेष का बोधक है, जो पिटकों में आता है ( दीघनिकाय २६ )। उसी का एक रूप पोसह या पोसथ भी है, जो आगमों में पहले ही से प्रयुक्त देखा जाता है ( उवासगदसाओ )।

'सावग' तथा 'उवासग' ये दोनों शब्द किसी-न-किसी रूप में पिटक ( दीघनिकाय ४ ) तथा आगमों में पहले ही से प्रचलित रहे हैं। यद्यपि बौद्ध परम्परा में 'सावग' का अर्थ है 'बुद्ध के साक्षात् भिन्दु-शिष्य' ( मज्झिमनिकाय ३ ), जब कि जैन परम्परा में वह 'उपासक' की तरह गृहस्थ अनुयायी अर्थ में ही प्रचलित रहा है।

कोई व्यक्ति गृहस्थाश्रम का त्याग कर भिन्दु बनता है तब उस अर्थ में एक वाक्य रूढ है, जो पिटक तथा आगम दोनों में पाया जाता है। वह वाक्य है "अगारास्मा अनगारियं पव्वजन्ति" ( महावग्ग ), तथा "अगाराओ अगारारियं पव्वइत्तए" ( भगवती ११-१२-४३१ )।

यहाँ केवल नमूने के तौर पर थोड़े से शब्दों की तुलना की है, पर इसके विस्तार के लिए और भी पर्याप्त गुजाइश है। ऊपर सूचित शब्द और अर्थ का सादृश्य खासा पुराना है। वह अकस्मात् हो ही नहीं सकता। अतएव इसके मूल में कहीं-न-कहीं जाकर एकता खोजनी होगी, जो संभवतः पार्श्वनाथ की परम्परा का ही संकेत करती है।

१६. मज्झिमनिकाय, महासिंहनादसुत्त।

परम्परा में ही दीक्षित हुए—फिर भले ही वे एक विशिष्ट नेता बने। महावीर तत्कालीन पार्श्वपत्निक परंपरा में ही हुए, इसी कारण से उनको पार्श्वनाथ के परंपरागत संघ, पार्श्वनाथ के परंपरागत आचार-विचार तथा पार्श्वनाथ का परम्परागत श्रुत विरासत में मिले, जिसका समर्थन नीचे लिखे प्रमाणों से होता है।  
संघ—

भगवती १-६-७६ में कालासवेसी नामक पार्श्वपत्निक का वर्णन है, जिसमें कहा गया है कि, वह किन्हीं स्थविरों से मिला और उसने सामायिक, संयम, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग, विवेक आदि चरित्र संबन्धी मुद्दों पर प्रश्न किए। स्थविरों ने उन प्रश्नों का जो जवाब दिया, जिस परिभाषा में दिया, और कालासवेसी ने जो प्रश्न जिस परिभाषा में किए हैं, इस पर विचार करें तो हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि, वे प्रश्न और परिभाषाएँ सब जैन परिभाषा से ही सम्बद्ध हैं। थैरों के उत्तर से कालासवेसी का समाधान होता है तब वह महावीर के द्वारा नवसशोधित पंचमहाव्रत और प्रतिक्रमणधर्म को स्वीकार करता है। अर्थात् वह महावीर के संघ का एक सभ्य बनता है।

भगवती ५-६-२२६ में कतिपय थैरों का वर्णन है। वे राजगृही में महावीर के पास मर्यादा के साथ जाते हैं, उनसे इस परिमित लोक में अनन्त रात-दिन और परिमित सप्त-दिन के बारे में प्रश्न पूछते हैं। महावीर पार्श्वनाथ का हवाला देते हुए जवाब देते हैं कि, पुरिसादाणीय पार्श्व ने लोक का स्वरूप परिमित ही कहा है। फिर वे अपेक्षाभेद से रात-दिन की अनन्त और परिमित संख्या का खुलासा करते हैं। खुलासा सुनकर थैरों को महावीर की सर्वज्ञता के विषय में प्रतीति होती है, तब वे वन्दन-नमस्कारपूर्वक उनका शिष्यत्व स्वीकार करते हैं, अर्थात् पंच महाव्रतों और सप्रतिक्रमणधर्म के अंगीकार द्वारा महावीर के संघ के अंग बनते हैं।

भगवती ६-३२-३७८, ३७९ में गांगेय नामक पार्श्वपत्निक का वर्णन है। वह वाणिज्यग्राम में महावीर के पास जाकर उनसे जीवों की उत्पत्ति-च्युति आदि के बारे में प्रश्न करता है। महावीर जवाब देते हुए प्रथम ही कहते हैं कि, पुरिसादाणीय पार्श्व ने लोक का स्वरूप शाश्वत कहा है। इसी से मैं उत्पत्ति-च्युति आदि का खुलासा अमुक प्रकार से करता हूँ। गांगेय पुनः प्रश्न करता है कि, आप जो कहते हैं वह किसी से सुनकर या स्वयं जानकर? महावीर के मुख से यहाँ कहलाया गया है कि, मैं केवली हूँ, स्वयं ही जानता हूँ। गांगेय को सर्वज्ञता की प्रतीति हुई, फिर वह चातुर्याभिक धर्म से पंचमहाव्रत स्वीकारने की अपनी

इच्छा प्रकट करता है और वह अन्त में सप्रतिक्रमण पंच महाव्रत स्वीकार करके महावीर के संघ का अंग बनता है ।

सूत्रकृतांग के नालंदाया अध्ययन ( २-७-७१, ७२, ८१ ) में पार्श्वपत्निक उदक पेढाल का वर्णन है, जिसमें कहा गया है कि, नालंदा के एक श्रावक लेप की उदकशाला में जब गौतम थे तब उनके पास वह पार्श्वपत्निक आया और उसने गौतम से कई प्रश्न पूछे । एक प्रश्न यह था कि, तुम्हारे कुमार-पुत्र आदि निर्ग्रन्थ जब गृहस्थों को स्थूल व्रत स्वीकार कराते हैं तो यह क्या सिद्ध नहीं होता कि निषिद्ध हिंसा के सिवाय अन्य हिंसक प्रवृत्तियों में स्थूल व्रत देनेवाले निर्ग्रन्थों की अनुमति है ? अमुक हिंसा न करो, ऐसी प्रतिज्ञा कराने से यह अपने आप फलित होता है कि, बाकी की हिंसा में हम अनुमत हैं—इत्यादि प्रश्नों का जवाब गौतम ने विस्तार से दिया है । जब उदक पेढाल का प्रतीति हुई कि गौतम का उत्तर सयुक्तिक है तब उसने चतुर्यामधर्म से पंचमहाव्रत स्वीकारने की इच्छा प्रकट की । फिर गौतम उसको अपने नायक ज्ञातपुत्र महावीर के पास ले जाते हैं । वहाँ उदक पेढाल पंचमहाव्रत सप्रतिक्रमणधर्म को अंगीकार करके महावीर के संघ में सम्मिलित होता है । गौतम और उदक पेढाल के बीच हुई विस्तृत चर्चा मनोरंजक है ।

उत्तराध्ययन के २३ वें अध्ययन में पार्श्वपत्निक निर्ग्रन्थ केशी और महावीर के मुख्य शिष्य इन्द्रभूति—दोनों के श्रावस्ती में मिलने की और आचार-विचार के कुछ मुद्दों पर संवाद होने की बात कही गई है । केशी पार्श्वपत्निक प्रभावशाली निर्ग्रन्थ रूप से निर्दिष्ट हैं; इन्द्रभूति तो महावीर के प्रधान और साक्षात् शिष्य ही हैं । उनके बीच की चर्चा के विषय कई हैं, पर यहाँ प्रस्तुत दो हैं । केशी गौतम से पूछते हैं कि, पार्श्वनाथ ने चार याम का उपदेश दिया, जब कि वर्धमान—महावीर ने पाँच याम—महाव्रत का, सो क्यों ? इसी तरह पार्श्वनाथ ने सचेल—सवल्ह धर्म बतलाया, जब कि महावीर ने अचेल—अबसन धर्म, सो क्यों ? इसके जवाब में इन्द्रभूति ने कहा कि, '० तत्त्वदृष्टि से चार याम और पाँच महाव्रत में कोई अन्तर नहीं है, केवल वर्तमान युग की कम और उलटी समझ देखकर ही महावीर ने विशेष शुद्धि की दृष्टि से चार के स्थान में पाँच महाव्रत का उपदेश किया है । और मोक्ष का वास्तविक कारण तो आन्तर ज्ञान, दर्शन और शुद्ध चरित्र ही है, वल्ह का होना, न होना, यह तो लोकदृष्टि है । इन्द्रभूति के मूलगामी जवाब की यथार्थता देखकर केशी पंचमहाव्रत स्वीकार करते हैं; और इस तरह महावीर के संघ के एक अंग बनते हैं ।

१७. उत्तराध्ययन. अ० २३, श्लोक २३-३२ ।

ऊपर के थोड़े से उद्धरण इतना समझने के लिए पर्याप्त हैं कि महावीर और उनके शिष्य इन्द्रभूति का कई स्थानों में पार्श्वपत्निकों से मिलन होता है। इन्द्रभूति के अलावा अन्य भी महावीर-शिष्य पार्श्वपत्निकों से मिलते हैं। मिलाप के समय आपस में चर्चा होती है। चर्चा मुख्य रूप से संयम के जुदे-जुदे अंग के अर्थ के बारे में एवं तत्त्वज्ञान के कुछ मन्तव्यों के बारे में होती है। महावीर जवाब देते समय पार्श्वनाथ के मन्तव्य का आधार भी लेते हैं और पार्श्वनाथ को 'पुरिसादाणीय' अर्थात् 'पुरुषों में आदेय' जैसा सम्मानसूचक विशेषण देकर उनके प्रति हार्दिक सम्मान सूचित करते हैं। और पार्श्व के प्रति निष्ठा रखनेवाले उनकी परंपरा के निर्ग्रंथों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। पार्श्वपत्निक भी महावीर को अपनी परीक्षा में खरे उतरे देखकर उनके संघ में दाखिल होते हैं अर्थात् वे पार्श्वनाथ के परंपरागत संघ और महावीर के नवस्थापित संघ—दोनों के संघान में एक कड़ी बनते हैं। इससे यह मानना पड़ता है कि, महावीर ने जो संघ रचा उसकी भित्ति पार्श्वनाथ की संघ-परंपरा है।

यद्यपि कई पार्श्वपत्निक महावीर के संघ में प्रविष्ट हुए, तो भी कुछ पार्श्वपत्निक ऐसे भी देखे जाते हैं, जिनका महावीर के संघ में सम्मिलित होना निर्दिष्ट नहीं है। इसका एक उदाहरण भगवती २-५ में यों है—तुंगीया नामक नगर में ५०० पार्श्वपत्निक श्रमण पधारते हैं। वहाँ के तत्त्वज्ञ श्रमणोपासक उनसे उपदेश सुनते हैं। पार्श्वपत्निक स्थविर उनको चार याम आदि का उपदेश करते हैं। श्रावक उपदेश से प्रसन्न होते हैं और धर्म में स्थिर होते हैं। वे स्थविरों से संयम, तप आदि के विषय में तथा उसके फल के विषय में प्रश्न करते हैं। पार्श्वपत्निक स्थविरों में से कालियपुत्र, मेहिल, आनन्दरत्निलय और कासव ये—चार स्थविर अपनी-अपनी दृष्टि से जवाब देते हैं। पार्श्वपत्निक स्थविर और पार्श्वपत्निक श्रमणोपासक के बीच तुंगीया में हुए इस प्रश्नोत्तर का हाल इन्द्रभूति राजगृही में सुनते हैं और फिर महावीर से पूछते हैं कि—“क्या ये पार्श्वपत्निक स्थविर प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हैं?” महावीर स्पष्टतया कहते हैं कि—“वे समर्थ हैं। उन्होंने जो जवाब दिया वह सच है; मैं भी वही जवाब देता।” इस संवादकथा में ऐसा कोई निर्देश नहीं कि, तुंगीयावाले पार्श्वपत्निक निर्ग्रंथ या श्रमणोपासक महावीर के संघ में प्रविष्ट हुए। यदि वे प्रविष्ट होते तो इतने बड़े पार्श्वपत्निक संघ के महावीर के संघ में सम्मिलित होने की बात समकालीन या उत्तरकालीन आचार्य शायद ही भूलते।

यहाँ एक बात खास ध्यान देने योग्य है कि, पार्श्वपत्निक श्रमण न तो



महावीर के पास आए हैं, न उनके संघ में प्रविष्ट हुए हैं, फिर भी महावीर उनके उत्तर की सच्चाई और क्षमता को स्पष्ट स्वीकार ही करते हैं।

दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि, जो पार्श्वपत्निक महावीर के संघ में आए, वे भी महावीर की सर्वज्ञता के बारे में पूरी प्रतीति कर लेने के पश्चात् ही उनकी विधिवत् वन्दन-नमस्कार - 'तिक्रुत्तो आथाहिणं पयाहिणं वन्दामि'— करते हैं; उसके पहले तो वे केवल उनके पास शिष्टता के साथ आते हैं— 'अदूर-सामंते ठिच्चा'।

पार्श्वनाथ की परंपरा के त्यागी और गृहस्थ व्यक्तियों से संबन्ध रखने वाली, उपलब्ध आगमों में जो कुछ सामग्री है, उसको योग्य रूप में सकलित एवं व्यवस्थित करके पार्श्वनाथ के महावीर-कालीन संघ का सारा चित्र पं० दलसुख मालवगिण्या ने अपने एक अभ्यासपूर्ण लेख में, बीस वर्ष पहले खींचा है जो इस प्रसंग में खास द्रष्टव्य है। यह लेख 'जैन प्रकाश' के 'उत्थान-महावीरांक' में छपा है।

आचार—

अब हम आचार की विरासत के प्रश्न पर आते हैं। पार्श्वपत्निक निर्ग्रंथों का आचार बाह्य-आभ्यन्तर दो रूप में देखने में आता है। अनगारत्व, निर्ग्रंथत्व, सचेलत्व, शीत, आतप आदि परिषह-सहन, नाना प्रकार के उपवास व्रत और भिक्षाविधि के कठोर नियम इत्यादि बाह्य आचार हैं। सामायिक समत्व या समभाव, पञ्चकूलाण—त्याग, संयम—इन्द्रियनियमन, संवर—कषायनिरोध, विवेक—अलिप्तता या सदसद्विवेक, व्युत्सर्ग—ममत्वत्याग, हिंसा असत्य अदत्तादान और बहिद्धादाण से विरति इत्यादि आभ्यन्तर आचार में सम्मिलित हैं।

पहले कहा जा चुका है कि, बुद्ध ने गृहत्याग के बाद निर्ग्रंथ आचारों का भी पालन किया था। बुद्ध ने अपने द्वारा आचरण किए गए निर्ग्रंथ आचारों का जो संक्षेप में संकेत किया है उसका पार्श्वपत्निक निर्ग्रंथों की चर्या के उपलब्ध वर्णन के साथ मिलान करते हैं<sup>१८</sup> एवं महावीर के द्वारा आचरित बाह्य चर्या के साथ मिलान करते हैं<sup>१९</sup> तो सन्देह नहीं रहता कि, महावीर को निर्ग्रंथ या अनगार धर्म की बाह्य चर्या पार्श्वपत्निक परंपरा से मिली है—भले ही उन्होंने उसमें देशकालानुसारी थोड़ा-बहुत परिवर्तन किया हो। आभ्यन्तर आचार भी भगवान् महावीर का वही है जो पार्श्वपत्निकों में प्रचलित था। कालासवेसीपुत्तः

१८. देखो—नोट नं० १४।

१९. आचारांग, अ० ६।

जैसे पार्श्वपत्थिक आभ्यन्तर चरित्र से संबद्ध पारिभाषिक शब्दों का जब अर्थ पूछते हैं तब महावीर के अनुयायी स्थविर वही जवाब देते हैं, जो पार्श्वपत्थिक परंपरा में भी प्रचलित था ।

निर्ग्रंथों के बाह्य-आभ्यन्तर आचार-चारित्र के पार्श्वपरंपरा से विरासत में मिलने पर भी महावीर ने उसमें जो सुधार किया है वह भी आगमों के विश्वसनीय प्राचीन स्तर में सुरक्षित है । पहले संघ की विरासतवाले वर्णन में हमने सूचित किया ही है कि, जिन-जिन पार्श्वपत्थिक निर्ग्रंथों ने महावीर का नेतृत्व माना उन्होंने सप्रतिक्रमण पाँच महाव्रत स्वीकार किए । पार्श्वनाथ की परंपरा में चार याम थे, इसलिए पार्श्वनाथ का निर्ग्रंथधर्म चातुर्याम कहलाता था । इस बात का समर्थन बौद्ध पिटक दीघनिकाय के सामञ्जसफलसुत्त में आए हुए निर्ग्रंथ के 'चातु-याम-संवर-संबुतो' इस विशेषण से होता है । यद्यपि उस सूत्र में ज्ञातपुत्र महावीर के मुख से चातुर्याम धर्म का वर्णन बौद्ध पिटक-संग्राहकों ने कराया है, पर इस अंश में वे भ्रान्त जान पड़ते हैं । पार्श्वपत्थिक परंपरा बुद्ध के समय में विद्यमान भी थी और उससे बुद्ध का तथा उनके कुछ अनुयायियों का परिचय भी था, इसलिये वे चातुर्याम के बारे में ही जानते थे । चातुर्याम के स्थान में पाँच यम या पाँच महाव्रत का परिवर्तन महावीर ने किया, जो पार्श्वपत्थिकों में से ही एक थे । यह परिवर्तन पार्श्वपत्थिक परंपरा की दृष्टि से भले ही विशेष महत्त्व रखता हो, पर निर्ग्रन्थ-भिन्न इतर समकालीन बौद्ध जैसी श्रमण परंपराओं के लिए कोई खास ध्यान देने योग्य बात न थी । जो परिवर्तन किसी एक पिरके की आन्तरिक वस्तु होती है उसकी जानकारी इतर परम्पराओं में बहुधा तुरन्त नहीं होती । बुद्ध के सामने समर्थ पार्श्वपत्थिक निर्ग्रंथ ज्ञातपुत्र महावीर ही रहे, इसलिए बौद्ध ग्रंथ में पार्श्वपत्थिक परंपरा का चातुर्याम धर्म महावीर के मुख से कहलाया जाए तो यह स्वाभाविक है । परन्तु इस वर्णन के ऊपर से इतनी बात निर्विवाद साबित होती है कि, पार्श्वपत्थिक निर्ग्रन्थ पहले चातुर्याम धर्म के अनुयायी थे, और महावीर के संबन्ध से उस परंपरा में पंच यम दाखिल हुए । दूसरा सुधार महावीर ने सप्रतिक्रमण धर्म दाखिल करके किया है, जो एक निर्ग्रन्थ परम्परा का आन्तरिक सुधार है । सम्भवतः इसीलिए बौद्ध ग्रन्थों में इसका कोई निर्देश नहीं ।

बौद्ध ग्रन्थों में २० पूरणकाश्यप के द्वारा कराए गए निर्ग्रन्थ के वर्णन में 'एकशाटक' विशेषण आता है ; 'अचेत' विशेषण आजीवक के साथ आता है । निर्ग्रन्थ का 'एकशाटक' विशेषण मुख्यतया पार्श्वपत्थिक निर्ग्रन्थ की ओर

२०. अंगुत्तरनिकाय, लुक्कनिपात, २-१ ।

हो संकेत करता है। हम आचारांग में वर्णित और सबसे अधिक विश्वसनीय महावीर के जीवन-अंश से यह तो जानते ही हैं कि महावीर ने गृहत्याग किया तब एक वस्त्र—चेल धारण किया था। क्रमशः उन्होंने उसका हमेशा के वास्ते त्याग किया, और पूर्णतया अचेलत्व स्वीकार किया<sup>२१</sup>। उनकी यह अचेलत्व भावना मूलगत रूप से हो या पारिपार्श्विक परिस्थिति में से ग्रहण कर आत्मसात् की हो, यह प्रश्न यहाँ प्रस्तुत नहीं; प्रस्तुत इतना ही है कि, महावीर ने सचेलत्व में से अचेलत्व की ओर कदम बढ़ाया। इस प्रकाश में हम बौद्धग्रन्थों में आए हुए निर्ग्रन्थ के विशेषण 'एकशाटक' का तात्पर्य सरलता से निकाल सकते हैं। वह यह कि, पार्श्वपत्निक परंपरा में निर्ग्रन्थों के लिये मर्यादित वस्त्रधारण वर्जित न था, जब कि महावीर ने वस्त्रधारण के बारे में अनेकान्तदृष्टि से काम लिया। उन्होंने सचेलत्व और अचेलत्व दोनों को निर्ग्रन्थ संघ के लिए यथाशक्ति और यथारुचि स्थान दिया। अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी ने भी अपने 'पार्श्वनाथाचा चातुर्थ्याम धर्म' (पृ० २०) में ऐसा ही मत दर्साया है। इसी से हम उत्तराध्ययन के केशी-गौतम-संवाद में अचेल और सचेल धर्म के बीच समन्वय पाते हैं। उसमें खास तौर से कहा गया है कि, मोक्ष के लिये तो मुख्य और पारमार्थिक लिंग—साधन ज्ञान-दर्शन-चारित्र्यरूप आध्यात्मिक सम्पत्ति ही है। अचेलत्व या सचेलत्व यह तो सौकिक—बाह्य लिंगमात्र है, पारमार्थिक नहीं।

इस तात्पर्य का समर्थन भगवती आदि में वर्णित पार्श्वपत्निकों के परिवर्तन से स्पष्ट होता है। महावीर के संघ में दाखिल होनेवाले किसी भी पार्श्वपत्निक निर्ग्रन्थ के परिवर्तन के बारे में यह उल्लेख नहीं है कि, उसने सचेलत्व के स्थान में अचेलत्व स्वीकार किया; जब कि उन सभी परिवर्तन करनेवाले निर्ग्रन्थों के लिए निश्चित रूप से कहा गया है कि उन्होंने चार याम के स्थान में पाँच महाव्रत और प्रतिक्रमण धर्म स्वीकार किया।

महावीर के व्यक्तित्व, उनकी आध्यात्मिक दृष्टि और अनेकान्त वृत्ति को देखते हुए ऊपर वर्णन की हुई सारी घटना का मेल सुसंगत बैठ जाता है। महाव्रत और प्रतिक्रमण का सुधार, यह अन्तःशुद्धि का सुधार है इसलिए महावीर ने उस पर पूरा भार दिया, जब कि स्वयं स्वीकार किए हुए अचेलत्व पर एकान्त भार

२१. णो चेविमेण वत्थेण पिहिस्तामि तंसि हेभंते ।

से पारए आवकहाए एयं खु अणुधम्मियं तस्स ॥२॥

संवच्छुरं साहियं मासं जं न रिक्कासि वत्थयं भगवं ।

अचेलए तत्रो चाइ तं वोसिज्ज वत्थमणुगारे ॥४॥

—आचारांग, १-६-१ ।

नहीं दिया। उन्होंने सोचा होगा कि, आखिर अचेतत्व या सचेतत्व, यह कोई जीवन-शुद्धि की अन्तिम कसौटी नहीं है। इसीलिए उनके निर्ग्रथ संघ में सचेत और अचेत दोनों निर्ग्रथ अपनी-अपनी रचि एवं शक्ति का विचार करके ईमानदारी के साथ परस्पर उदार भाव से रहे होंगे। उत्तराध्ययन का वह संवाद उस समय की सूचना देता है, जब कि कभी निर्ग्रथों के बीच सचेतत्व के बारे में सारासार के तारतम्य की विचारणा चली होगी। पर उस समन्वय के मूल में अनेकान्त दृष्टि का जो यथार्थ प्राण स्पन्दित होता है वह महावीर के विचार की देन है।

पार्श्वपत्निक परंपरा में जो चार ग्राम थे उनके नाम स्थानांगसूत्र में यों आते हैं; ( १ ) सर्वप्राणातिपात—( २ ) सर्वमृषावाद—( ३ ) सर्वअदत्तादान—और ( ४ ) सर्वबहिद्धादाण—से विरमण<sup>२२</sup>। इनमें से 'बहिद्धादाण' का अर्थ जानना यहाँ प्राप्त है। नवांगीटीकाकार अभयदेव ने 'बहिद्धादाण' शब्द का अर्थ 'परिग्रह' सूचित किया है। 'परिग्रह से विरति' यह पार्श्वपत्निकों का चौथा ग्राम था, जिसमें अब्रह्म का वर्जन अवश्य अभिप्रेत था<sup>२३</sup>। पर जब मनुष्यसुलभ दुर्बलता के कारण अब्रह्मविरमण में शिथिलता आई और परिग्रह-विरति के अर्थ में स्पष्टता करने की जरूरत मालूम हुई तब महावीर ने अब्रह्मविरमण को परिग्रहविरमण से अलग स्वतंत्र यम रूप में स्वीकार करके पाँच महाव्रतों की भीष्मप्रतिज्ञा निर्ग्रथों के लिए रखी और स्वयं उस प्रतिज्ञा-पालन के पुरस्कर्ता हुए। इतना ही नहीं बल्कि क्षण-क्षण के जीवनक्रम में बदलनेवाली मनोवृत्तियों के कारण होनेवाले मानसिक, वाचिक, कायिक दोष भी महावीर को निर्ग्रथ-जीवन के लिए अत्यन्त अखरने लगे, इससे उन्होंने निर्ग्रथ-जीवन में सतत जाग्रति रखने की दृष्टि से प्रतिक्रमण धर्म को नियत स्थान दिया, जिससे कि प्रत्येक निर्ग्रथ सायं-प्रातः अपने जीवन की शुद्धियों का निरीक्षण करे और लगे

२२. मज्झिमग्गा वावीसं अरहंता भगवंता चाउज्जामं धम्मं पणवेंति, तं०—  
सब्बातो पाणातिवायाओ वेरमणं, एवं मुसावायाओ वेरमणं, सब्बातो  
अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सब्बाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं १।—स्थानांग,  
सूत्र २६६, पत्र २०१ अ।

२३. “बहिद्धादाणाओ” ति बहिद्धा—मैथुनं पहिग्रहविशेषः आदानं च  
परिग्रहस्तयोर्द्वैकत्वमथवा आदीयत इत्यादानं परिग्राह्यं वस्तु तच्च धर्मोपकर-  
णमपि भवतीत्यत आह—बहिस्तात्-धर्मोपकरणाद् बहिर्यदिति। इह च मैथुनं  
परिग्रहेऽन्तर्भवति, न ह्यपरिग्रहीता योषिद् भुज्यत इति।—स्थानांग, २६६  
सूत्रवृत्ति, पत्र २०१ ब।

दोषों की आलोचनापूर्वक आयादा दोषों से बचने के लिए शुद्ध संकल्प को दृढ़ करे। महावीर की जीवनचर्या और उनके उपदेशों से यह भली-भाँति जान पड़ता है कि, उन्होंने स्वीकृत प्रतिज्ञा की शुद्धि और अन्तर्जागृति पर जितना भार दिया है उतना अन्य चीजों पर नहीं। यही कारण है कि तत्कालीन अनेक पार्श्वपत्नियों के रहते हुए भी उन्हीं में से एक ज्ञातपुत्र महावीर ही निर्ग्रन्थ संघ के अग्रगुण रूप से या तीर्थंकर रूप से माने जाने लगे। महावीर के उपदेशों में जितना भार कषायविजय पर है—जो कि निर्ग्रन्थ-जीवन का मुख्य साध्य है—उतना भार अन्य किसी विषय पर नहीं है। उनके इस कठोर प्रयत्न के कारण ही चार याम का नाम स्मृतिशेष बन गया व पाँच महाव्रत संयमधर्म के जीवित अंग बने।

महावीर के द्वारा पंच महाव्रत-धर्म के नए सुधार के बारे में तो श्वेताम्बर-दिगम्बर एकमत हैं, पर पाँच महाव्रत से क्या अभिप्रेत है, इस बारे में विचारभेद अवश्य है। दिगम्बराचार्य वटकेर का एक 'मूलाचार' नामक ग्रन्थ है—जो संग्रहात्मक है—उसमें उन्होंने पाँच महाव्रत का अर्थ पाँच यम न बतलाकर केवल जैन-परंपरा परिचित पाँच चारित्र बतलाया है। उनका कहना है कि, महावीर के पहले मात्र सामायिक चारित्र था, पर महावीर ने छेदोपस्थापन दाखिल करके सामायिक के ही विस्तार रूप से अन्य चार चारित्र बतलाए, जिससे महावीर पंच महाव्रत-धर्म के उपदेशक माने जाते हैं। आचार्य वटकेर की तरह पूज्यपाद, अकलंक, आशाधर आदि लगभग सभी दिगम्बराचार्य और दिगम्बर विद्वानों का वह एक ही अभिप्राय है<sup>२४</sup>। निःसन्देह श्वेताम्बर-परंपरा के पंच महाव्रतधर्म के खुलासे से दिगम्बर परंपरा का तत्संबन्धी खुलासा जुदा पड़ता है। भद्रबाहुकर्तृक मानी जानेवाली निर्युक्ति में भी छेदोपस्थापना चारित्र को दाखिल करके पाँच चारित्र महावीरशासन में प्रचलित किए जाने की कथा निर्दिष्ट है, पर यह कथा केवल चारित्रपरिणाम की तीव्रता, तीव्रतरता और तीव्रतमता के तारतम्य पर एवं भिन्न-भिन्न दीक्षित व्यक्ति के अधिकार पर प्रकाश डालती है, न कि समग्र निर्ग्रन्थों के लिए अवश्य स्वीकार्य पंच महाव्रतों के ऊपर। जब कि महावीर का पंच महाव्रत-धर्म-विषयक सुधार निर्ग्रन्थ दीक्षा लेनेवाले सभी के लिए एक-सा रहा, ऐसा भगवती आदि ग्रंथों से तथा बौद्ध पिटक निर्दिष्ट 'चातु-याम-संवर-संबुतो'<sup>२५</sup> इस विशेषण से फलित होता है। इसके समर्थन में प्रतिक्रमण धर्म का उदाहरण पर्याप्त है। महावीर ने प्रतिक्रमण धर्म भी सभी निर्ग्रन्थों

२४. देखो—पं० जुगल किशोर जी मुख्तार कृत—जैनाचार्यों का शासनभेद, परिशिष्ट 'क'।

२५. "चातु-याम-संवर-संबुतो" इस विशेषण के बाद 'सव्व-वारि-वारितो' इत्यादि

के लिए समान रूप से अनुशासित किया। इस प्रकाश में पंच महाव्रत धर्म का अनुशासन भी सभी निर्ग्रन्थों के लिये रहा हो, यही मानना पड़ता है। मूलाचार आदि दिगंबर परंपरा में जो विचारभेद सुरक्षित है वह साधारण अवश्य है, क्योंकि, श्वेताचारीय सभी ग्रन्थ छेदोपस्थान सहित पाँच चारित्र का प्रवेश महावीर के शासन में बतलाते हैं। पाँच महाव्रत और पाँच चारित्र ये एक नहीं। दोनों में पाँच की संख्या समान होने से मूलाचार आदि ग्रन्थों में एक विचार सुरक्षित रहा तो श्वेताम्बर ग्रन्थों में दूसरा भी विचार सुरक्षित है। कुछ भी हो, दोनों परंपराएँ पंच महाव्रत धर्म के सुधार के बारे में एक-सी सम्मत हैं।

वस्तुतः पाँच महाव्रत यह पार्श्वपार्थिक चातुर्थायम का स्पष्टीकरण ही है। इससे यह कहने में कोई बाधा नहीं कि, महावीर को संयम या चारित्र की विरासत भी पार्श्वनाथ की परंपरा से मिली है।

हम योगपरंपरा के आठ योगांग से परिचित हैं। उनमें से प्रथम अंग यम है। पातंजल योगशास्त्र (२-३०, ३१) में अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम गिनाए हैं; साथ ही इन्हीं पाँच यमों को महाव्रत भी कहा है—जब कि वे पाँच यम परिपूर्ण या जाति-देश-काल-समयानवच्छिन्न हों। मेरा खयाल है कि, महावीर के द्वारा पाँच यमों पर अत्यन्त भार देने एवं उनको महाव्रत के रूप से मान लेने के कारण ही 'महाव्रत' शब्द पाँच यमों के लिए विशेष प्रसिद्धि में आया। आज तो यम या याम शब्द पुराने जैनश्रुत में, बौद्ध पिटकों में और उपलब्ध योगसूत्र में मुख्यतया सुरक्षित है। 'यम' शब्द का उतना प्रचार अब नहीं है, जितना प्रचार 'महाव्रत' शब्द का।

विशेषण ज्ञातपुत्र महावीर के लिए आते हैं। इनमें से 'सव्व-वारि-वारितो' का अर्थ अटकथा के अनुसार श्री राहुल जी आदि ने किया है कि—“निगणठ ( निर्ग्रन्थ ) जल के व्यवहार का कारण करता है ( जिससे जल के जीव न मारे जाएँ )।” ( दीवनिकाय, हिन्दी अनुवाद, पृ० २१ ) पर यह अर्थ भ्रमपूर्ण है। जलबोधक “वारि” शब्द होने से तथा निर्ग्रन्थ सचिच जल का उपयोग नहीं करते, इस वस्तुस्थिति के दर्शन से भ्रम हुआ जान पड़ता है। वस्तुतः “सव्व-वारि-वारितो” का अर्थ यही है कि—सच अर्थात् हिंसा आदि चारों पापकर्म के वारि अर्थात् वारम्ब याने निषेध के कारण वारित अर्थात् वारित; याने हिंसा आदि सब पापकर्मों के निवारण के कारण उन दोषों से वारित। यही अर्थ अगले 'सव्व-वारि-युतो', 'सव्व-वारि-धुतो' इत्यादि विशेषण में स्पष्ट किया गया है। वस्तुतः सभी विशेषण एक ही अर्थ को भिन्न-भिन्न भंगी से दरसाते हैं।

जब चार याम में से महावीर के पाँच महाव्रत और बुद्ध के पाँच शील के विकास पर विचार करते हैं तब कहना पड़ता है कि, पार्श्वनाथ के चार याम की परंपरा का ज्ञातपुत्र ने अपनी दृष्टि के अनुसार और शाक्यपुत्र ने अपनी दृष्टि के अनुसार विकास किया है<sup>२६</sup>, जो अभी जैन और बौद्ध परंपरा में विरासतरूप से विद्यमान है।

श्रुत—

अब हम अन्तिम विरासत—श्रुतसम्पत्ति—पर आते हैं। श्वेतांबर-दिगंबर दोनों के वाङ्मय में जैन श्रुत का द्वादशांगी रूप से निर्देश है।<sup>२७</sup> आचारंग आदि ग्यारह अंग और बारहवें दृष्टिवाद अंग का एक भाग चौदह पूर्व, ये विशेष प्रसिद्ध हैं। आगमों के प्राचीन समझे जाने वाले भागों में जहाँ-जहाँ किसी के अनंगार धर्म स्वीकार करने की कथा है वहाँ या तो ऐसा कहा गया है कि वह सामायिक आदि ग्यारह अंग पढ़ता है या वह चतुर्दश पूर्व पढ़ता है।<sup>२८</sup> हमें इन उल्लेखों के ऊपर से विचार यह करना है कि, महावीर के पूर्व पार्श्वनाथ या उनकी परंपरा की श्रुत-सम्पत्ति क्या थी? और इसमें से महावीर को विरासत मिली या नहीं? एवं मिली तो किस रूप में?

शास्त्रों में यह तो स्पष्ट ही कहा गया है कि, आचारंग आदि ग्यारह अंगों

२६. अभ्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी ने अन्त में जो “पार्श्वनाथ चा चातुर्याम धर्म” नामक पुस्तक लिखी है उसका मुख्य उद्देश ही यह है कि, शाक्य-पुत्र ने पार्श्वनाथ के चातुर्यामधर्म की परंपरा का विकास किस-किस तरह से किया, यह बतलाना।

२७. षट्खण्डागम ( धवला टीका ), खण्ड १, पृष्ठ ६ : बारह अंगगिष्म्या । समवायांग, पत्र १०६, सूत्र १३६ : दुवालासंगे गणपिडगे । नन्दीसूत्र ( विजयदानसूरि संशोधित ) पत्र ६४ : अंगपविष्टं दुवालसविष्टं पण्यत्तं ।

२८. ग्यारह अंग पढ़ने का उल्लेख - भगवती २. १; ११-६ ज्ञाता धर्मकथा, अ० १२ । चौदह पूर्व पढ़ने का उल्लेख—भगवती ११-११-४३२, १७-२-६१७ ; ज्ञाताधर्म-कथा, अ० ५ । ज्ञाता० अ० १६ में पण्डवों के चौदह पूर्व पढ़ने का व द्रौपदी के ग्यारह अंग पढ़ने का उल्लेख है। इसी तरह ज्ञाता० २-१ में काली साध्वी बन कर ग्यारह अंग पढ़ती है, ऐसा वर्णन है।

की रचना महावीर के अनुगामी गणधरों ने की।<sup>२६</sup> यद्यपि नन्दीसूत्र की पुरानी व्याख्या—चूर्णि—जो विक्रम की आठवीं सदी से अर्वाचीन नहीं—उसमें 'पूर्व' शब्द का अर्थ बतलाते हुए कहा गया है कि, महावीर ने प्रथम उपदेश दिया इसलिए 'पूर्व' कहलाए<sup>३०</sup>, इसी तरह विक्रम की नवीं शताब्दी के प्रसिद्ध आचार्य वीरसेन ने धवला में 'पूर्वगत' का अर्थ बतलाते हुए कहा कि जो पूर्वो को प्राप्त हो या जो पूर्व स्वरूप प्राप्त हो वह 'पूर्वगत'<sup>३१</sup>; परन्तु चूर्णिकार एवं उत्तरकालीन वीरसेन, हरिभद्र, मलयगिरि आदि व्याख्याकारों का वह कथन केवल 'पूर्व' और 'पूर्वगत' शब्द का अर्थ घटन करने के अभिप्राय से हुआ जान पड़ता है। जब भगवती में कई जगह महावीर के मुख से यह कहलाया गया है कि, अमुक वस्तु पुरुषादानीय पार्श्वनाथ ने वही कही है जिसको मैं भी कहता हूँ, और जब हम सारे श्वेतांबर-दिगंबर श्रुत के द्वारा यह भी देखते हैं कि, महावीर का तत्त्वज्ञान वही है जो पार्श्वपत्निक परम्परा से चला आता है, तब हमें 'पूर्व' शब्द का अर्थ समझने में कोई दिक्कत नहीं होती। पूर्व श्रुत का अर्थ स्पष्टतः यही है कि, जो श्रुत महावीर के पूर्व से पार्श्वपत्निक परम्परा द्वारा चला आता था, और जो किसी न किसी रूप में महावीर को भी प्राप्त हुआ। प्रो० याकोबी आदि का भी ऐसा ही मत है।<sup>३२</sup> जैन श्रुत के मुख्य विषय नवतत्त्व, पंच अस्तिकाय, आत्मा और कर्म का संबन्ध, उसके कारण, उनकी निवृत्ति के उपाय, कर्म का स्वरूप इत्यादि हैं। इन्हीं विषयों को महावीर और उनके शिष्यों ने संक्षेप से विस्तार और विस्तार से संक्षेप कर भले ही कहा हो, पर वे सब विषय पार्श्वपत्निक परम्परा के पूर्ववर्ती श्रुत में किसी-न-किसी रूप

२६-३०. जम्हा तित्थकरो तित्थपवत्तणकाले गणधराणं सव्वसुत्ताधारत्तणतो पुव्वं पुव्वगतसुत्तत्थं भासति तम्हा पुव्वं ति भणित्ता, गणधरा पुण सुत्तरयणं करेन्ता आशाराइकमेण रणंति ठवेंति य ।

—नन्दीसूत्र ( विजयदानसूरिसंशोधित ) चूर्णि, पृ० १११ अ ।

३१. पुव्व्वाणं गयं पत्त-पुव्वसरूवं वा पुव्वगयमिदि गणणामं ।

—षट्खंडागम ( धवला टीका ), पुस्तक १, पृ० ११४ ।

2. The name ( पूर्व ) itself testifies to the fact that the Purvas were superseded by a new canon, for Purva means former, earlier.....

—Sacred Books of the East, Vol XXII  
Introduction, P. XLIV



में निरूपित थे, इस विषय में कोई सन्देह नहीं। एक भी स्थान में महावीर या उनके शिष्यों में से किसी ने ऐसा नहीं कहा कि, जो महावीर का श्रुत है वह अपूर्व अर्थात् सर्वथा नवोत्पन्न है। चौदह पूर्व के विषयों की एवं उनके भेद प्रमेदों की जो टूटी-फूटी यादी नन्दी सूत्र<sup>३३</sup> में तथा धवला<sup>३४</sup> में मिलती है उसका आचारांग आदि ग्यारह अंगों में तथा अन्य उपांग आदि शास्त्रों में प्रतिपादित विषयों के साथ मिलान करते हैं तो, इसमें सन्देह ही नहीं रहता कि, जैन परंपरा के आचार-विचार विषयक मुख्य मुद्दों की चर्चा, पार्श्वपत्निक परंपरा के पूर्वश्रुत और महावीर की परंपरा के अंगोपांग श्रुत में समान ही है। इससे मैं अभी तक निम्नलिखित निष्कर्ष पर आया हूँ—

( १ ) पार्श्वनाथीय परंपरा का पूर्वश्रुत महावीर को किसी-न-किसी रूप में प्राप्त हुआ। उसी में प्रतिपादित विषयों पर ही अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार आचारांग आदि ग्रंथों की जुदे जुदे हाथों से रचना हुई है।

( २ ) महावीरशासित संघ में पूर्वश्रुत और आचारांग आदि श्रुत—दोनों की बड़ी प्रतिष्ठा रही। फिर भी पूर्वश्रुत की महिमा अधिक ही की जाती रही है। इसी से हम दिगम्बर-श्वेतांबर दोनों परम्परा के साहित्य में आचार्यों का ऐसा प्रयत्न पाते हैं, जिसमें वे अपने-अपने कर्म विषयक तथा ज्ञान आदि विषयक इतर पुरातन ग्रन्थों का संबन्ध उस विषय के पूर्वनामक ग्रन्थ से जोड़ते हैं, इतना ही नहीं पर दोनों परम्परा में पूर्वश्रुत का क्रमिक हास लगभग एक-सा वर्णित होने पर भी कमीवेश प्रमाण में पूर्वज्ञान को धारण करनेवाले आचार्यों के प्रति विशेष बहुमान दरसाया गया है। दोनों परंपरा के वर्णन से इतना निश्चित मालूम पड़ता है कि, सारी निर्ग्रन्थ परम्परा अपने वर्तमान श्रुत का मूल पूर्व में मानती आई है।

( ३ ) पूर्वश्रुत में जिस-जिस देश-काल का एव जिन-जिन व्यक्तियों के जीवन का प्रतिबिम्ब था उससे आचारांग आदि अंगों में भिन्न देशकाल एवं भिन्न व्यक्तियों के जीवन का प्रतिबिम्ब पड़ा यह स्वाभाविक है; फिर भी आचार एवं तत्त्वज्ञान के मुख्य मुद्दों के स्वरूप में दोनों में कोई खास अन्तर नहीं पड़ा।

**उपसंहार—**

महावीर के जीवन तथा धर्मशासन से सम्बद्ध अनेक प्रश्न ऐसे हैं, जिनकी गवेषणा आनश्यक है; जैसे कि आजीविक परंपरा से महावीर का संबन्ध तथा

३३. नन्दीसूत्र, पत्र १०६ अ से।

३४. षट्खंडागम ( धवला टीका ), पुस्तक १, पृ० ११४ से।

इतर समकालीन तापस, परिव्राजक और बौद्ध आदि परंपराओं से उनका संबन्ध-  
ऐसे संबन्ध जिन्होंने महावीर के प्रवृत्ति क्षेत्र पर कुछ असर डाला हो या महावीर  
की धर्म प्रवृत्ति ने उन परम्पराओं पर कुछ-न-कुछ असर डाला हो ।

इसी तरह पार्श्वनाथ की जो परम्परा महावीर के संघ में सम्मिलित होने से  
तटस्थ रही उसका अस्तित्व कब तक, किस-किस रूप में और कहाँ-कहाँ रहा  
अर्थात् उसका भावी क्या हुआ—यह प्रश्न भी विचारणीय है । खारवेला, जो  
अद्यतन संशोधन के अनुसार जैन परम्परा का अनुगामी समझा जाता है, उसका  
दिगम्बर या श्वेताम्बर श्रुत में कहीं भी निर्देश नहीं इसका क्या कारण ? क्या  
महावीर की परम्परा में सम्मिलित नहीं हुए ऐसे पार्श्वपत्नियों की परम्परा के  
साथ तो उसका सम्बन्ध रहा न हो ? इत्यादि प्रश्न भी विचारणीय हैं ।

प्रो० याकोबी ने कल्पसूत्र की प्रस्तावना में गौतम और बौधायन धर्मसूत्र के  
साथ निर्ग्रन्थों के व्रत-उपव्रत की तुलना करते हुए सूचित किया है कि, निर्ग्रन्थों  
के सामने वैदिक संन्यासी धर्म का आदर्श रहा है इत्यादि । परन्तु इस प्रश्न को  
भी अब नए दृष्टिकोण से विचारना होगा कि, वैदिक परम्परा, जो मूल में एकमात्र  
गृहस्थाश्रम प्रधान रही जान पड़ती है, उसमें संन्यास धर्म का प्रवेश कब कैसे  
और किन बलों से हुआ और अन्त में वह संन्यास धर्म वैदिक परंपरा का एक  
आवश्यक अंग कैसे बन गया ? इस प्रश्न की भीमांसा से महावीर पूर्ववर्ती निर्ग्रन्थ  
परम्परा और परिव्राजक परम्परा के संबन्ध पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता है ।

परन्तु उन सब प्रश्नों को भावी विचारकों पर छोड़कर प्रस्तुत लेख में मात्र  
पार्श्वनाथ और महावीर के धार्मिक संबन्ध का ही संक्षेप में विचार किया है ।

## परिशिष्ट ।

तेरां काले रां तेरां समए रां पासावच्चिज्जे कालासवेसियपुत्ते राामं अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छति २ ता थेरे भगवंते एवं वयासी—थेरा सामाहयं ए याणांति थेरा सामाहयस्स अट्ठं ए याणांति थेरा पच्चक्खाणं ए याणांति थेरा पच्चक्खाणस्स अट्ठं ए याणांति, थेरा संजमं ए याणांति थेरा संजमस्स अट्ठं ए याणांति, थेरा संवरं ए याणांति थेरा संवरस्स अट्ठं ए याणांति, थेरा विउस्सग्गं ए याणांति थेरा विउस्सग्गस्स अट्ठं ए याणांति ६ । तए रां ते थेरां भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासी—जाणामो रां अज्जो ! सामाहयं जाणामो रां अज्जो ! सामाहयस्स अट्ठं जाव जाणामो रां अज्जो ! विउस्सग्गस्स अट्ठं । तए रां से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते एवं वयासी—जति रां अज्जो ! तुब्भे जाणहं सामाहयं जाणहं सामाहयस्स अट्ठं जाव जाणहं विउस्सग्गस्स अट्ठं, के भे अज्जो ! सामाहए के भे अज्जो सामाहयस्स अट्ठं जाव के भे विउस्सग्गस्स अट्ठं ? तए रां ते थेरा भगवंतो कालासवेसियपुत्तं अणगारं एवं वयासी—आयाणे अज्जो ! सामाहए आयाणे अज्जो ! सामाहयस्स अट्ठं जाव विउस्सग्गस्स अट्ठं ।

एत्थ रां से कालासवेसियपुत्ते अणगारे संबुद्धे थेरे भगवंते वंदति रामंसति २ ता एवं वयासी—एएसि रां भंते ! पथाणं पुत्वि अणणाणाए अणवणायाए अणोहियाए...

णो रोहए इयाणिं भंते ! एतेसि पयाणं जाणयाए...

रोएमि एवमेयं से जहेयं तुब्भे वदह,

तए रां से कालासवेसियपुत्ते अणगारे थेरे भगवंते वदहं नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता चाउजामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमरां धम्मं उवसंपज्जित्ता रां विहरइ ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक १ उद्देश ६ । सू० ७६

तेरां कालेरां २ पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति २ समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा एवं चदासी से दूरां भंते ! असंखेज्जे लोए अणांता रातिंदिया उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा विगच्छिसु वा विगच्छंति वा विगच्छिस्संति वा परित्ता

रातिदिया उप्पडिजसु वा ३ विगच्छिसु वा ३ ? इता अज्जो ! असंखेज्जे लोए अखंता रातिदिया तं चेव । से केणद्वेणं जाव विगच्छिस्संति वा ? से नूणं भंते अज्जो पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं सासए लोए बुइए...''

जे लोक्कइ से लोए ? इता भगवं ! से तेणद्वेणं अज्जो ! एवं बुद्ध असंखेज्जे तं चेव । तप्पभित्तिं च णं ते पासावच्छेज्जा थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं पच्चभिजाणंति सव्वन्नु सव्वदरिसी तए णं ते थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति २, एवं वदासि—इच्छामि णं भंते ! तुज्जे अंतिए चाउज्जामाओ धम्मओ पंचमहव्वहयं सम्पडिक्कमणं धम्मं उवसंपडिज्जा णं विहरित्तए । अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक ५ उद्देश ६ । सू० २२७

तेणं कालेणं तेणं समए णं वाणियगामे नगरे होत्था ।...''

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्छिज्जे गंगेए नामं अणगारे जेणेव समणे भगवं महावीरं तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छइत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—संतरं भंते ! नेरइया उववज्जंति निरन्तरं नेरइया उववज्जंति ? गंगेया ! संतरं पि नेरइया उववज्जंति निरंतरं पि नेरइया उववज्जंति । ( सू० ३७१ )

से केणद्वेणं भंते ! एवं बुद्ध सतो नेरइया उववज्जंति नो असतो नेरइया उववज्जंति जाव सओ वेमाणिया चयंति नो असओ वेमाणिया चयंति ? से नूणं भंते ! गंगेया ! पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं सासए लोए बुइए...''

सयं भंते ! एवं जाणह उदाहु असयं असोच्चा एते एवं जाणह उदाहु सोच्चा सतो नेरइया उववज्जंति नो असतो नेरइया उववज्जंति...''

गंगेया ! सयं एते एवं जणामि नो असयं, ( सू० ३७८ )

तप्पभिदं च णं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं पच्चभिजाणइ सव्वन्नु सव्वदरिसी ।

इच्छामि णं भंते ! तुज्जं अंतियं चाउज्जामाओ धम्मओ पंचमहव्वहयं

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक ६ उद्देश ३२ । सू० ३७६

तेणं कालेणं २ तुंगिया नामं नगरी होत्था...'' ( सू० १०७ )

तेणं कालेणं २ पासावच्छिजा थेरा भगवंतो जातिसंपन्ना...''विहरंति ॥

( सूत्र १०८ )

तए णं ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं तीसे य महत्तिमहालियाए चाउज्जामं धम्मं परिकहेति...''

तए णं ते समणोवासया थेरे भगवंते एवं वदासी—जति णं भंते ! संजमे

अणुएहयफले तवे वोदाणफले किं पत्तियं णं भंते ! देवा देवलोएसु उववज्जंति ? तत्थ णं कालियपुत्ते नामं थेरे ते समणोवासए एवं वदासी—पुव्वतवेणं अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति । तत्थ णं मेहिले नामं थेरे ते समणोवासए एवं वदासी—पुव्वसंजमेणं अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति । तत्थ णं आणंदरक्खिए णामं थेरे ते समणोवासए एवं वदासी—कम्मियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति । तत्थ णं कासवे णामं थेरे ते समणोवासए एवं वदासी—संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति । पुव्वतवेणं पुव्वसंजमेणं कम्मियाए संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति । सच्चे णं एस अट्ठे नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए । तए णं ते समणोवासया थेरेहिं भगवंतेहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरिया समाणा हट्ठतुट्ठा थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति.....(सू० ११०)

तए णं से भगवं गोयमे रायगिहे नगरे जाव अडमाणे बहुजणसहं निसामेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुंगियाए नगरीए बहिया पुप्फवतीए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवासएहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिया—संजमे णं भंते ! किंफले ? तवे णं भंते ? किंफले ? तए णं ते थेरा भगवंतो ते समणोवासए एवं वदासी—संजमे णं अज्जो—अणुएहयफले तवे वोदाणफले तं चेव जाव पुव्वतवेणं पुव्वसंजमेणं कम्मियाए संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए ॥ से कहमेयं मण्णे एवं ? तए णं समणे० गोयमे इमीसे कहाए लद्धे समणे.....

समणं भ० महावीरं जाव एवं वयासी—एवं खलु भंते ! अहं तुभेहिं अभ्णुण्णाए समाणे रायगिहे नगरे उच्चनीयमङ्गिमाणि कुलाणि धरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसहं निसामेमि एवं खलु देवा० तुंगियाये नगरीए बहिया पुप्फवईए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवासएहिं इयाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिया—संजए णं भंते ! किंफले ? तवे किंफले ? तं चेव जाव सच्चेणं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए । तं पभू णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरित्तए उदाहु अप्पभू ?

पभू णं गोयमा ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए,

अहं पि य णं गोयमा ! एवमाइक्खामि..... (सू० १११)

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक २ उद्देश ५ ।

रायगिहे नामं नयरे होत्था । (सू० ६८)

तत्थ णं नालंदाए बाहिरियाए लेवे नामं गाहावई होत्था ।

से णं लेवे नामं गाहावई समणोवासए यावि होत्था । (सू० ६९)

लेवस्स गाहावहस्स नालंदाए नाहिरियाए.....

उदगसाला.....

तस्सिं च णं गिहपदेसंमि भगवं गोयमे विहरइ, भगवं च णं अहे आरामसि ।  
अहे णं उदए पेढालपुत्ते भगवं पासावच्चिज्जे निथंठे मेयज्जे गोत्तेणं जेशेव भगवं  
गोयमे तेशेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता भगवं गोयमं एवं वयासी—आउसतो !  
गोयमा अत्थि खलु मे केइ पदेसे पुच्छियव्वे, तं च आउसो ! अहासुयं अहादरिसुयं  
मे वियागरेहि सवार्यं, भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी—अविथाइ आउसो !  
सोच्चा निसम्म जाणिससामो सवार्यं, उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी ॥  
( सू० ७१ )

आउसो ! गोयमा अत्थि खलु कुमारपुत्तिया नाम समणा निग्गंथा तुम्हाणं  
पवयणं पवयमाणा गाहावइं समणोवासगं उवसंपन्नं एवं पच्चक्खावेंति - णण्णत्थ  
अभिन्नोएणं गाहावइ, चोरगहण्विमोक्खणयाए तसेहि पायोहिं णिहाय दंडं, एवं  
एहं पच्चक्खंताणं दुपच्चक्खायं भवइ, एवं एहं पच्चक्खावेमाणाणं दुपच्चक्खावियव्वं  
भवइ, एहं ते परं पच्चक्खावेमाणा अतियरति सयं पतिष्णं । ( सू० ७२ )

एतेसिं णं भंते ! पदाणं एरिंह जाणियाए सवणयाए बोहिए जाव उवहारण-  
याए एयमइं सदहामि...

तए णं से उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी—इच्छामि णं भंते !  
तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं रापडिक्कमणं धम्मं उवसंप-  
ज्जित्ता णं विहरित्तए ॥ ( सू० ८१ )

श्रुत्स्कंध २ श्रुस ७ नालंदीयाध्ययन ७ ।

चाउज्जामो अ जो धम्मो जो इमो पंच सिक्खिओ ।  
देसिओ वद्धमाणेणं पासेण य महासुणी ! ॥ २३ ॥  
एगकज्जपवन्नाणं विसेसे कि नु कारणं ।  
धम्मे दुविदे मेहावी ! कहं विप्पच्चओ न ते ? ॥ २४ ॥  
तओ केसिं बुवंलं तु गोयमो इणमव्ववी ।  
पन्ना समिक्खए धम्मं तत्तं तत्तविण्णिच्छयं ॥ २५ ॥  
पुरिमा उज्जु जड्ढा उ वक्कजड्ढा य पच्छिमा ।  
मज्झिमा उज्जुपन्ना उ तेन धम्मे दुहा कए ॥ २६ ॥  
पुरिमाणं दुब्बिसुज्झो उ चरिमाणं दुरणुपालओ ।  
कप्पो मज्झिमगाणं तु सुविसुज्झो सुपालओ ॥ २७ ॥  
साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।  
अन्नोऽवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥ २८ ॥

अचेतश्चो अ जो धम्मो, जो इमो संतुत्तरो ।  
 देसिञ्चो वद्धमारोणः पासेण य महामुणी ॥ २६ ॥  
 एगकञ्जपवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं ? ।  
 लिंगे दुविहे मेहावी ! कहं विप्पच्चञ्चो न ते ? ॥ ३० ॥  
 केसि एवं बुवाणं तु, गोयमो इणमब्बवी ।  
 विन्नारोणं समागम्म, धम्मसाहणमिच्छियं ॥ ३१ ॥  
 पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाविहविकप्पणं ।  
 जत्तत्थं गहणत्थं च, लोणे लिंगपञ्चोअणं । ३२ ॥  
 उत्तराध्ययन केशीगौतमीयाध्ययन २३ ।